(जन जागरण की विचार प्रधान त्रैमासिकी)

संरक्षक-रामचरन गुप्त

संपादक-रमेशराज

तेवरी-पक्ष-15

बैंजामिन मोलोइस स्मृति अंक

Scanned by CamScanner

अब जबकि
एक–एक कर तुम्हारे साथी
बनियों के बहीखातों का
आचरण बन चुके हैं
पूंजी पतियों के सामने
अपनी आत्मीयता की
लार टपका रहे हैं,
अपने आत्मसम्मान का
मर्सिया गा रहे हैं।
ऐसे में अकेले सिर्फ अकेले
आदमीयत का दर्द
पीने के अलावा
रास्ता ही क्या है रमेशराज ?
नपुंसकों के साथ
मुठ्ठियाँ तानने से
होता ही क्या है रमेशराज ?

अब जबकि
एक–एक कर तुम्हारे साथी
अनैतिकता की जांघों में
कर रहे हैं
आदर्शों का वीर्यपात,
किसी मासूम—
मजबूरी की
छाती मसल रहे हैं
उनके कामातुर हाथ।

ऐसे में मानवता की
किस किस बिटिया को
बचाओगे रमेशराज ?

तेवरीपक्ष-15

Scanned by CamScanner

जबकि हरेक बलात्कारी साजिश में
(चाहे अनजाने सही)
खुद को भी
शरीक पाओगे रमेशराज ।

अब जबकि
इतिहास के किसी
दुर्गन्ध भरे हिस्से में
दम तोड़ रही है
तुम्हारे साथियों की
भलमनसाहत
किसी टुकड़खोर कुतिया की तरह
अपनी पूंछ हिला रही है
इस व्यवस्था के सामने
उनकी बगावत ।
यानी वे सच्चाई की राह पर
चलते-चलते
इतना थक चुके हैं कि
ज्योतिषियों को
हाथ दिखाने चला गया है
उनके भीतर का संघर्ष ।
किसी पीर के मजार पर
भाग्य की अगरबत्ती
जला रहा है
उनका विवेक ।

ऐसे में अकेले सिर्फ अकेले
नपुंसकता के खिलाफ
तुम्हें लड़ना होगा रमेशराज
पुरुषत्व का
एक नया इतिहास
गढ़ना होगा रमेशराज ।

Scanned by CamScanner

किसी भी रचनात्मक आन्दोलन की उपादेयता इस बात में निहित होती है कि उसके प्रति लिये गये निष्कर्ष वैज्ञानिक परीक्षणों पर आधारित हों।

वैज्ञानिक परीक्षणों से आशय उसके कथ्य और शिल्प सम्बन्धी चरित्र को तर्क की कसौटी पर कसना, जांचना, परखना होना चाहिए। उक्त परीक्षण के अभाव में जो भी निष्कर्ष मिलेंगे, वे साहित्य में व्यक्त किये गये मानवीय पक्ष का ऐसा रहस्यवादी गूढ़ दर्शन प्रस्तुत करेंगे जिसमें कब्रीर या कबीर जैसे रचनाकार की यथार्थवादी रचनाधर्मिता का कोई महत्व नहीं होगा। अतार्किक दर्शन से चिपके लोग यदि ऐसे रचनाकारों को सरकारी और सुविधा भोगी कवियों की संज्ञाओं से विभूषित करने लग जायें तो इसमें अचरज जैसी कोई बात नहीं होनी चाहिए। क्योंकि जिन लोगों के लिये उनकी 'निजी समझ' भी एक रहस्य बनी हुई है, वे उन परम्पराओं से क्यूं कर कटना चाहेंगे। जिनके तहत पूरे समाज को उस 'सच' से काटकर अलग कर दिया गया है या किया जा रहा है, जिसे 'वैज्ञानिक सच' कहा जाता है।

यदि हिन्दी का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन किया जाये तो यह बात एक दम साफ हो जाती है कि उर्दू, हिन्दी की ही एक शैली या बोली मात्र है, जिसमें अरबी–फारसी के शब्दों का बहुतायत से प्रयोग मिलता है। डॉ० कमल नारायण टंडन के अनुसार—"फारसी तुर्की आदि हिन्दी से अधिक जटिल थीं। इसलिये हिन्दुओं में इन भाषाओं के सीखने के शताब्दियों पहले, मुसलमानों ने हिन्दी बोलना सीख लिया था। वे इसमें कविता भी करने लगे थे ········इसी हिन्दी में अरबी–फारसी आदि भाषाओं के शब्द प्रयोग होने लगे········उर्दू कभी किसी भाषा से नहीं निकली बल्कि·······हिन्दी का ही नाम उर्दू रख लिया गया।" उन्होंने अपनी इस बात को पुष्ट करते हुए आगे लिखा है—"उर्दू में सब क्रियाएं हिन्दी की हीं हैं·······केवल संज्ञा–शब्दों के आधार पर कोई भाषा नयी नहीं कही जा सकती·······उदाहरण के लिये—अगर उर्दू–फारसी पढ़ा व्यक्ति कहता है–"मैं कलकत्ते से रवाना हुआ और जुमा को सबेरे की गाड़ी से इलाहाबाद पहुँच गया, मरीज को देखा, उसके जीने की उम्मीद नहीं है" तो इसी बात को एक ग्रेजुएट इस तरह बोलता

है—"मैं कलकत्ता से चला, फ्राइडे को मार्निंग की ट्रेन से इलाहाबेड पहुँचा। पेशेन्ट को देखा, वह होपलेस कंडीशन में है।"

यदि उक्त मुसलमान की भाषा का एक अलग नाम उर्दू रखा जाएगा तो उस ग्रेजुएट की भाषा का क्या नाम होगा ? हम तो दोनों को हिन्दी ही मानेंगे। जब हिन्दी उर्दू का व्याकरण एक है, तब उर्दू स्वतन्त्र भाषा कैसे हो सकती है।"

(उर्दू साहित्य का इतिहास, ले०—डॉ० क०ना० टंडन)

जब यह भाषा वैज्ञानिक कटु सत्य है कि उर्दू हिन्दी ही है, ऐसे में गजल के साथ हिन्दी विशेषण लगाकर उसे 'हिन्दी गजल' बनाना, निस्संदेह हमारी अज्ञानता का ही परिचायक है। साथ ही हमारे साम्प्रदायिक होने का द्योतक भी। भारतेन्दु युग में हिन्दी और उर्दू के नाम पर हमारे साहित्यकारों ने भाषाई अलगाव की नीति अपनाकर जिस तरह की साम्प्रदायिकता खड़ी की थी, अफसोस यह है कि उसी साम्प्रदायिकता की पहल आज 'हिन्दी गजल' के नाम से की जा रही है।

साहित्यकारों में यह संकीर्णता या साम्प्रदायिकता इस कदर हावी हो या रही है कि अरबी-फारसी के शब्दों से युक्त कबीर की रचना 'हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या' गजल की श्रेणी में रख दी गयी, जबकि ठीक इसी तरह के तथाकथित गजल शैली के पद, पद ही माने गये। इसी प्रकार आज तक उक्त शैली से युक्त तुलसी, सूर, मीरा, विद्यापति, घनानंद केशवदास आदि के सवैया, कवित्त, घनाक्षरी आदि छंद गजल नहीं स्वीकारे गये।

यदि कोई इन्हें गीतात्मक शैली के आधार पर गजल से अलग करता है तो यही गीतात्मक शैली आज तथाकथित 'हिन्दी गजल' में भी दृष्टि गोचर हो रही है। ऐसे में क्या कोई यह बताने का कष्ट करेगा कि यह 'हिन्दी गजल क्या है और इसका शिल्प किस प्रकार का है ? क्या हिन्दी गजल के पितामह दुष्यन्त से लेकर आज तक इसमें अरबी–फारसी के शब्दों की भरमार नहीं है ? यदि है तो इस 'हिन्दी गजल' को भाषा वैज्ञानिक कसौटी पर क्यों नहीं कसा जा रहा है ?

तेवरी को गजल, कहने वाले रचनाकार अपने पक्ष में कोई तर्क भी प्रस्तुत करेंगे या यूँ ही तेवरी या तेवरीकारों को गरियाते रहेंगे। अगर यूँ ही अतार्किक बहसें होती रहीं और यह गाली गलौज का सिलसिला जारी रहा

तो ऐसे में श्री बाबू राम वर्मा की बात कितनी बात सार्थक महसूस होती है कि —'कुछ लोग तेवरी को गजल ही मानें तो क्या करोगे ? कैसे और किस किस से लड़ोगे ? उन्हें कैसे समझाओगे कि 'नयी विधाएं समय की माँगानुसार बनती रहती हैं ।'

साहित्यिक और सामाजिक चरित्र की पहचान के लिये हमें अपनी समझ तो साफ ही करनी ही पड़ेगी और इस सत्य को जानना ही होगा कि माना आदमी अन्ततः आदमी है, फिर भी उसकी पिता, पुत्र, पति, पूंजीपति, सर्वहारा, राजा, प्रजा, नेता, मन्त्री, शोषित, शोषक आदि के रूप में कहीं न कहीं सार्थक पहचान निहित है। ऐसा न होता तो आदमी को इन रूपों में प्रस्तुत करने की क्या आवश्यकता थी ? 'आदमी अन्ततः आदमी है' से अगर गजलगो यह कहना चाहते हों कि कविता अन्ततः गजल है तो हमारा ऐसे लोगों से विनम्र निवेदन है कि पहले वे समाज और साहित्य का अध्ययन करें। तब शायद वह यह बात समझ सकें—

कि किताब अन्ततः किताब ही है लेकिन उसे पत्रिका, संग्रह, स्मारिका, वेद, गीता, पुराण, कुरान आदि संज्ञाओं से विभूषित करना उसकी चारित्रिक पहिचान को दर्शाना है ।

पेड़ अन्ततः पेड़ ही है फिर भी उसे जड़, पत्ती, शाखा, फूल, से लेकर आम, नीम, बबूल आदि खानों में बाँटना जरूरी है ।

रस (भाव) अन्ततः रस ही है, किन्तु उसका अनुभव शृंगार, वात्सल्य, वीभत्स, भक्ति आदि रूपों में किया जाता है ।

विचार अन्ततः विचार ही होते हैं लेकिन उनकी अभिव्यक्ति नैतिक, अनैतिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, राष्ट्रीय, अराष्ट्रीय आदि रूपों में होती है ।

समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, मनोविज्ञान, दर्शन शास्त्र का मूल आधार मानव-व्यवहार ही है फिर भी उसमें सीमा-रेखा खींचा जाना जरूरी है ।

नारी अन्ततः नारी ही है फिर भी उसे माँ, बहिन, बेटी, बहू, पत्नी, रखैल, नर्तकी, वीरांगना के रूप में पुकारना नारी के अस्तित्व को खंड-खड करना नहीं है बल्कि उसकी एक सार्थक पहिचान बनाना है । यदि इस सार्थक पहिचान बनाने वाले व्यक्ति या रचनाकार को ये गजलगो अपाहिज, महत्वाकांक्षी, गैर जिम्मेदार, नपुंसक आक्रोश का शिकार, साजिशी और शातिर मानते हैं तो हम यहाँ यह डंके की चोट

Scanned by CamScanner

कहेंगे कि ऐसे लोग मादामकामा, दुर्गा भाभी, कनकलता जैसी देशभक्तों और विरहाग्नि में जलती लैला, शीरी, हीर जैसी प्रेमभक्तों के चेहरों के ओज और अभिव्यक्ति को एक ही तरफ आंकना चाह रहे हैं। यदि उन्हें कोठे पर बैठने वाली चम्पाबाई और रानी लक्ष्मीबाई में कोई अन्तर नजर आता है ? तो उन्हें वैश्या और वीरांगना में अन्तर स्पष्ट करने में शर्म क्यों महसूस होती है, दम क्यों घुटता है ?

यदि 'ऐसे रचनाकार इस सार्थकता को कोई नाम नहीं दे पाते हैं तो उन्हें एक खालिस्तानी और एक हिन्दुस्तानी में भला अन्तर नजर आ ही कैसे सकता है ? ऐसे में इन लोगों को यह समझाना भी निस्संदेह कठिन कार्य हो जाएगा कि—एक कवि जब आलोचना के क्षेत्र में उतरता है तो उसे उसकी रचनात्मक विशेषता के आधार पर अलोचक पुकारा जाना बेहद जरूरी है।

विद्यार्थी विद्या ग्रहण करने के उपरान्त जब नौकरी या व्यवसाय के क्षेत्र में उतरता है तो उसे विद्यार्थी नहीं, कर्मचारी या व्यवसायी कहा जाता है।

श्री शिव ओम अम्बर के अनुसार—'गजल अब किसी शोख हथेली पर अंकित मेंहदी की दंतकथा से हटकर युवा आक्रोश की मुट्ठी में थमी मशाल है।' तब क्या मेंहदी रची हथेली और मशाल में कोई अन्तर नहीं होता ? यदि गजल मादक भंगिमाओं से रिझाने वाले, मदिरापान कराने वाले, रतिक्रियाओं में डूब जाने वाले अपने चरित्र को त्यागकर एक समाज सेविका की भूमिका निभा रही है तो इसे नर्तकी या वैश्या की जगह समाज सेविका कहने में इन रचनाकारों को शर्म क्यूं आती है ? कहीं तेवरी का विरोध करने वाले रचनाकार प्रेमी को बाहों में जकड़ने के जोश को आक्रोश तो नहीं समझ बैठे हैं ? साथ ही समकालीन गजल का यदि कोई प्रारूप है तो बताया क्यों नहीं जा रहा है ?

रमेशराज

Scanned by CamScanner

तेवरी का अपना तेवर

यों लगभग एक दशक से यत्र-तत्र पत्र-पत्रिकाओं में तेवरी के विषय में हल्की जानकारी होती रही है। और विगत दिनों बाबा नागार्जुन के सम्मान में आयोजित गोष्ठी में कोटद्वार प्रवास के दौरान तेवरी के पुरोधा डॉ॰ देवराज से भी मिलने का अवसर मिला और इस विषय में हल्की-फुल्की चर्चा भी हुई। और मुझे सदैव ऐसा ही लगा कि प्रगतिशील कविता, जनवादी कविता या शोषित-पीड़ित के लिए समर्पित कविता के आस पास 'तेवरी' की कविताएं अपने पड़ाव डाले नजर आती हैं। किन्तु जब मुझे अलीगढ़ आकर तेवरी के युवा कवियों के बीच बैठने का अवसर मिला और अलीगढ़ में इस कविता आन्दोलन के केन्द्र बिन्दु श्री रमेशराज से चर्चा हुई तो ऐसा लगा कि तेवरी-कविताओं में जो दर्द, अकुलाहट, आग, आन्दोलन सन्निहित है, वह अवश्य कुछ नया कर गुजरने की क्षमता रखता है।

इसी क्रम में जब मुझे 'तेवरी' के कविता संग्रह या यों कहना चाहिये कि तेवरी संग्रह पढ़ने को मिले तो उभरते हुये युवा कवियों में मुझे अभूतपूर्व संभावनाएं परिलक्षित हुईं। इसी लिये इन तेवरी सग्रहों की चर्चा करना यहाँ पर समीचीन होगा। यों 'तेवरी-पक्ष' एक त्रैमासिक पत्रिका भी प्रकाशित होती रही है। किन्तु 'संग्रह' उससे पृथक अपना स्थाई महत्व रखते हैं। चर्चा क्रम में सर्वप्रथम फरवरी—८३ में प्रकाशित 'अभी जुबाँ कटी नहीं' प्रस्तुत है। इस संग्रह में छः युवा कवियों की तेवरियाँ अपने नये अन्दाज में प्रस्तुत की गई हैं। इससे पूर्व पाठक रचनाओं तक पहुंचे युवा सम्पादक—रमेशराज ने सम्पादकीय के माध्यम से व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हुये 'तेवरी' आन्दोलन की पृष्ठभूमि भी प्रस्तुत की है। तुलसी, विद्यापति, बिहारी कालिदास और अज्ञेय की अपेक्षा अपने को कबीर, निराला, मुक्तिबोध, धूमिल और नागार्जुन से अधिक जुड़ा हुआ महसूस किया है तेवरी की इस युवा पीढ़ी ने। यों तेवरी शब्द तेवर का ही परिवर्तित रूप है। जिसका अर्थ है तासीर, गर्माहट आदि। किन्तु उसे एक आन्दोलन का रूप देकर रोमानियत की गजल से पृथक गर्माहट का रूप मान लिया गया है। इस नाम को सृजित करने में डॉ॰ देवराज विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं। सर्व प्रथम 'अभी जुबाँ कटी नहीं' के कवियों में सर्वश्री अरुण लहरी, अजय अंचल, योगेन्द्र शर्मा की बानगियाँ प्रस्तुत हैं—

भ्रष्टार धर्म है उनका।
दुर्व्यवहार धर्म है उनका॥
बेच रहे हैं वे सौगन्धें।
अब व्यापार धर्म उनका॥

अरुण लहरी की उक्त पंक्तियों में वर्तमान व्यवस्था की पतनोन्मुखी पराकाष्ठा का कितना सजीव चित्रण हुआ है। इन्हीं की रचित निम्न पंक्तियों में प्रगति की वर्तमान

स्थिति का तीखा व्यंग्यात्मक चित्र द्रष्टव्य है—

हम सुनहरे कल की ओर बढ़ रहे हैं आजकल।
स्वार्थ की कुछ सीढ़ियों पर चढ़ रहे हैं आजकल।।

अजय अंचल को लग रहा है कि सारी शैतानी की जड़ कुर्सियाँ हैं तभी तो वे लिखते हैं—

कुर्सियाँ सिखला रही हैं आदमी को देखिये।
हर कदम पर इक नया व्यभिचार कोई क्या करे।।

इतना ही नहीं योगेन्द्र शर्मा यहाँ तक कहने को विवश हैं—

वही छिनरे वही डोली के संग हैं प्यारे।
देख ले ये सियासत के रंग हैं प्यारे।।

श्री सुरेश त्रस्त, ज्ञानेन्द्र साज और रमेशराज भी संग्रह के अग्रिम कवि हैं। श्री सुरेश त्रस्त ने अपनी रचनाओं में लोकधुन को जीवित करने का प्रयास किया है—

दल दल में है गाड़ी बहिना।
गाड़ीवान अनाड़ी बहिना।।
जीना है दुश्वार सखी री।
होने अत्याचार सखी री।।

श्री रमेशराज ने अपनी लम्बी रचना के माध्यम से लेखनी में आग उतारने जोश भरने और जुझारु पन जुटाने का प्रयास किया है। कुछ पंक्तियाँ बड़ी सशक्त बन पड़ी हैं—

अब हंगामा मचा लेखनी।
कोई करतब दिखा लेखनी।।
गोबर शोषण सहते-सहते।
नक्सलवादी बना लेखनी।।
महाजनों को देता गाली।
अब के होरी मिला लेखनी।।
अब टूटे हर इक सन्नाटा।
ऐसी बातें उठा लेखनी।।

इस प्रकार सम्पूर्ण रूप से 'अभी जुबाँ कटी नहीं' संग्रह की रचनाएं यह सिद्ध करती हैं कि लेखकों की वह कतार अभी मिटी नहीं है; जिन की जुबाँ में एक नया तेवर नयी ताजगी मौजूद है। इसीलिये इस संग्रह का नाम सार्थक है कि यथार्थ लेखक वंश की अभी जुबाँ कटी नहीं है।

तेवरी का दूसरा संग्रह 'कबीर जिन्दा है' भी अपने तेवर में पिछले संग्रह से किसी भी प्रकार कमजोर नहीं आता। सम्पादकीय पृष्ठ भूमि में भाई रमेशराज लिखते हैं कि 'जब-जब भी कविता सामाजिक यथार्थ से कतराकर चली है तब-तब आम जनता की गर्दन पर पूंजीवादी ढाँचे के शोषण की तलवारें भरभराकर टूटी हैं। तेवरी एक आवेग, एक आन्दोलन के द्वारा व्यवस्था बदलाव का प्रयास है। अँधेरे के बीच मजदूर के पास एक लालटेन-सा है।

Scanned by CamScanner

इसीलिये तेवरी के कवियों के बीच में गालिब, मीर, मजाज, दाग, अज्ञेय, तुलसी, सूर की अपेक्षा कबीर साक्षात् अर्न्तमन में बोलता नजर आता है। इस संग्रह में नये पुराने तेइस कवियों की आग उगलती तेवरियाँ प्रस्तुत हुई हैं। राजेश महरोत्रा की कुछ पंक्तियाँ कितना सार्थक बयान प्रस्तुत करती हैं—

नदी किनारे तड़प रही मछली बेचारी। / पानी से भर मरुथल देंगे बातें झूठी॥
तीन बीघे खेत में इतनी फसल पैदा हुई।/चार दाने घर को आए शेष जाने क्या हुई॥

गिरि मोहन 'गुरु' की इन पंक्तियों में व्यंग्य की बानगी देखिए—

वैसे तो बिच्छू की तरह काटते हैं ये। / अटकी पै मगर तलवा तलक चाटते हैं ये॥

डॉ० देवराज की गर्मा-गर्म तेवरी तेजी से प्रहार करती नजर आती है—

हमारे पूर्वजों को आपने ओढ़ा बिछाया है।
कफन तक नोंच डाला लाश को नंगा लिटाया है॥
जमाखोरों कुशल चाहो अगर तो ध्यान से सुनलो।
निकालो अन्न निर्धन का जहाँ तुमने छुपाया है॥

श्याम बिहारी श्यामल—'आँख—आँख में लाल खत्रात्र चाहिए, देश को फिर इन्कलाब चाहिये' कहकर कविता के प्रयोजन को व्यक्त करते हैं। विक्रम सोनी भी व्यवस्था दोष की आम बात यूं बयान करते हैं—

बिक रहा है आजकल ईमान भी। / जिन्दगी का हर हसी उपमान भी।
ये व्यवस्था है गूंगी कोयल। / इसको अब कूक की जरूरत है॥

गूंगी कोयल सर्वदा नया प्रतीक प्रयोग किया गया है इसके लिये कवि बधाई का पात्र है। जगदीश श्रीवास्त ने निम्न पंक्तियों में आजादी का नंगा यथार्थ व शोषित वर्ग के प्रति संवेदनशीलता व्यक्त की है—

सारी उम्र हुई चपरासी, चुप बैठा है गंगाराम।
चेहरे पर छा गई उदासी, चुप बैठा है गंगाराम॥

श्री सुरेश त्रस्त की रचना में भी व्यवस्था पर ऐसी चोट करती बानगी प्रस्तुत हुई है—

जाथ जोड़कर महाजनों के पास खड़ा है होरीराम।
ऋण की अपने मन में लेकर आस खड़ा है होरीराम॥

रमेशराज की पंक्तियों में लगातार आक्रोश की ज्वाला सदैव जलती नजर आती है—

बस्ती-बस्ती मिल रहे अब भिन्नाये लोग।/सीने में आक्रोश की आग छुपाए लोग॥
रोजी रोटी दे हमें या तो ये सरकार। / वर्ना हम हो जाएंगे गुस्सैले खूंखार॥

इसके अतिरिक्त और भी रचनायें इस संग्रह में अच्छी बन पड़ी हैं। किन्तु कुछ भर्त्ती की रचनाएं भी सम्पादक ने जुटाने में हिचक नहीं दिखाई है। जो प्रोत्साहन की दृष्टि से तो प्रशंसनीय हैं किन्तु संग्रह के महत्व को बौना बनाती हैं। फिर भी कुल मिलाकर संग्रह को पढ़कर ऐसा अवश्य लगता है कि आज के युवा कवियों के अर्न्तमन में आज भी किसी न किसी रूप में कबीर अवश्य जीवित है।

इस क्रम का तीसरा कविता संग्रह 'इतिहास घायल है' फरवरी—८५ में प्रकाशित तेवरी का तृतीय पुण्य है। जिसकी सम्पादकीय में बन्धुवर रमेशराज ने व्यवस्था के षड़-यंत्रकारी स्वरूप को प्रस्तुत कर उसके द्वारा इतिहास को घायल करने के षड़यन्त्र

बे-नकाब किया है। जिसमें तेवरी के युवा कवि अपने जुझारू पन से संलग्न हैं। यद्यपि यह संग्रह पिछले संग्रहों से बाद में प्रकाशित हुआ है किन्तु यह उनकी अपेक्षा हल्का नजर पड़ता है। इसमें सर्व श्री गजेन्द्र बेवस, बेजार, विजयपाल सिंह, अनिल कुमार अनल, अरुण लहरी, सुरेश त्रस्त, गिरीश गौरव, योगेन्द्र शर्मा और रमेशराज की नूतन तेवरियाँ प्रस्तुत हुई हैं।

इस संग्रह की रचनाओं में तेवर ताजगी और आक्रोश लगभग वैसा ही है जो पिछले संग्रहों में देखने को मिला। व्यवस्था विरोध, शोषित की बेबसी, सरकार की अकर्मण्यता, गरीबी, मजबूरी, भगवान, ईमान, सियासी चलन ठीक उसी रूप में प्रस्तुत हुए हैं जो लगातार पिछले संग्रहों में नजर आते रहे हैं। उदाहरण के लिए दो-चार बानगियाँ देना ही पर्याप्त होगा—

अब कलम तलवार होने दीजिए। / दर्द को अंगार होने दीजिए॥
आदमीयत के लिये जो लड़ रहा। / मत उसे बेजार होने दीजिये॥ —'बेजार'

लोग खंडित हो रहे हैं एकता के नाम पर।
रक्त रंजित हो रहे हैं एकता के नाम पर॥ —'गिरीश गौरव'

जब कोई थैली पाते हैं जनसेवक जी।
कितने गद्‌गद हो जाते हैं जनसेवक जी॥ —'रमेशराज'

यह संग्रह पढ़कर निश्चय ही यह एहसास होता है कि आज के जनसेवकों ने इतिहास को निश्चय रूप से घायल कर दिया है।

अन्तिम क्रम में मेरे सामने सार्थक सृजन द्वारा प्रस्तुत कविवर बेजार का प्रथम कविता संग्रह है। यांत्रिक अभिन्ता होते हुए भी कवि बेजार ने जितनी तल्ख और तेज, तर्रार तेवरियाँ लिखी हैं वे निश्चित रूप से बधाई योग्य हैं। अधिक कुछ न कहकर उनकी कुछ बानगियाँ प्रस्तुत करके 'एक प्रहार लगातार' को पाठकों से बार-बार पढ़ने और मनन करने का आग्रह करूँगा। रचनाओं में नई पीढ़ी को नये सृजन की महती प्रेरणा प्राप्त होगी—

फिर यहाँ जयचन्द पैदा हो गये।
मीरजाफर जिन पै शैदा हो गये॥
पुरस्कार हित बिकी कलम अब क्या होगा।
भाटों की है जेब गरम—अब क्या होगा॥
जिस हवेली को रियाया टेकती मत्था रही।
वह हवेली जिस्म के व्यापार का अड्डा रही॥

इस प्रकार निर्विवाद रूप से कवि बेजार का संग्रह 'एक प्रहार लगातार' व्यवस्था पर लगातार प्रहार करने का सार्थक हथियार है जो युवा पीढ़ी को और भी तीखा प्रहार करने की प्रेरणा देता रहेगा। उक्त सभी संग्रह क्रमशः अमर क्रान्तिकारी रामप्रसाद 'बिस्मिल', मन्मथनाथ गुप्त, अशफाकउल्ला खाँ और सरदार भगत सिंह को समर्पित हुए हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि तेवरी के युवा कवि क्रान्तिकारी चिन्तन एवं सृजन को प्रतिबद्ध हैं। सम्पूर्ण रूप में इस आन्दोलनात्मक सृजन क्रम और प्रस्तुतिकरण के लिये भाई—रमेशराज और सार्थक सृजन प्रकाशन ईसा नगर, अलीगढ़ बधाई के पात्र हैं।

—श्री मदन मोहन उपेन्द्र

Scanned by CamScanner

।। तेवरी : प्रश्नों के घेरे में।।

अधिकांश गजलगोओं का यह कहना कि समय परिवर्तन के साथ गजल के मिजाज में परिवर्तन आया है; निस्सन्देह यह सोचने पर मजबूर करता है कि गजल के मिजाज में क्या और कैसा परिवर्तन आया है ? जैसा कि गजलगो मानते हैं कि अब गजल कल्पनाओं के आकाश में उडने के बजाय सामाजिक यथार्थ की जमीन पर समाज के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर सामाजिक विकृतियों, विसंगतियों से जूझ रही है; राजनीतिज्ञों की साजिशों का पर्दाफाश कर रही है। अब इसके इर्द-गिर्द घुंघरुओं की झंकार, शराब के प्यालों की खनखनाहट के बजाय पत्थरों के टूटने और हथौड़ों की खट-पट का शोर है; अय्याशों की वाह-वाही की जगह मालिक की बद्तमीजी और फटकारों की बौछार है। कुल मिलाकर आज गजल सामाजिक हितों और नैतिक मूल्यों के लिये सभ्यता के भेड़ियों और आदमखोरों के खिलाफ संघर्षित है।

इस युद्धरत गजल को (जो हिन्दी पत्रिकाओं में देखने को मिल रही है) कुछ लोगों ने हिन्दीगजल कहने का भी प्रयास किया है; यहाँ यह सोचने का विषय है कि चार-छः हिन्दी शब्द डाल देने से यदि कोई रचना हिन्दी गजल हो सकती है (जबकि सच तो यह है कि उर्दू भी हिन्दी की एक बोली है) तो भाषायी या बोलियों के आधार पर वह संस्कृत, अरबी, रूसी, अँग्रेजी, तुर्की, मराठी, कन्नड़, भोजपुरी, अवधी या ब्रज-भाषा गजल क्यों नहीं हो सकती ?

दूसरी तरफ यह भी सोचने का विषय है कि यदि किसी रचना के कथ्य या शिल्प में क्रान्तिकारी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है तो वह अपनी मौलिक पहिचान खो देती है अथवा नहीं ? यदि वह क्रान्तिकारी परिवर्तन के साथ अपनी मौलिक पहिचान खोती है, अपने पुराने रूप को त्यागकर एकदम नये रूप में प्रस्तुत होती है तो उसे पुराने ही नाम से पुकारा जाना नितान्त नासमझी से युक्त गैर जिम्मेदाराना कार्य होगा। ठीक इस तरह जैसे यदि कोई वैश्या वैश्यावृत्ति को त्यागकर अपना घर बसा एक आदर्श पत्नी की भूमिका अदा करती है, लेकिन हम उसे फिर भी 'वैश्या' ही सम्बोधित करते हैं।

क्या इन रूढ़िवादी गजलगोओं को कोठे पर बैठने वाली चम्पाबाई और अँग्रेजों के छक्के छुड़ाने वाली लक्ष्मीबाई में कोई अन्तर नजर नहीं आता ? यदि इस सामाजिक बदलाव या सामाजिक क्रान्ति के पक्षधर तेवर को 'तेवरी' नाम से पुकारा या परिभाषित किया जा रहा है तो इसमें बेमानी क्या और क्यों है ?

Scanned by CamScanner

तेवरी पर यह आरोप लगाना कितना हास्यास्पद है कि चाकू, छुरी नेता, बलात्कार आदि कठोर शब्दों का प्रयोग रचना की खूबसूरती को नष्ट कर देता है। क्या ऐसे गजलगो ये बताने का कष्ट करेंगे कि दंगों में नेताओं के साम्प्रदायिकता भड़काने वाले वक्तव्यों और गुण्डों द्वारा चाकू और छुरी प्रहार से उत्पन्न आदमी की चीत्कार व शरीर से बहती हुई लहू की धार के कारुणिक दृश्यों के बीच कौन-सा सौन्दर्य या खूब सूरती होती है ? जिसे वे कौन से सुन्दरतम, कर्ण प्रिय सहज ढगी शब्दों या प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करना चाहेंगे ? क्या वे बलात्कार के वीभत्स दृश्यों के बीच गुण्डों के शिकंजे में छटपटाती नारी के चेहरे पर फूलों जैसी मुस्कान, कंठ से चीत्कार के बजाय सीत्कार सुन सकेंगे ? जब सामाजिक यथार्थ कठोरतम, क्लिष्टतम, शोषित, बलत्कृत और अतिपीड़ित हो चुका है तो उसकी अभि-व्यक्ति सहज और पुष्पमण्डित कैसे हो सकती है ?

विश्व इतिहास साक्षी है कि इतिहास की कीर्तनियां मुद्राओं, प्रशस्तिगानों, चाटुकारी प्रवृत्तियों या प्रेमी-प्रेमिकाओं के रिझाने वाली भंगिमाओं ने न तो कभी सामाजिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार की है और न कभी कर सकेंगी। साहित्य का असली सौन्दर्य तो रानी लक्ष्मी बाई की तरह तलवार उठाने में ही रहा है, भगत सिंह की तरह संसद में बम फेंककर बहरो सरकार के कान खोलने में रहा है। तथाकथित अहिंसा के पुजारियों को भी उन्नीस सौ बयालीस में 'करो या मरो' का नारा देकर अंग्रेजों की हत्याएं करने, बम प्रयोग से लेकर समस्त अस्त्र-शस्त्र प्रयोग करने पर मजबूर होना पड़ा। विश्व की हर क्रान्ति बल प्रयोग से ही आयी।

यदि ये गजलगो सामाजिक यथार्थ से कतराकर कोरी काल्पनिकता की फूलों से लदी मादक गंध से युक्त जमीन पर हो टिके रहना चाहते हैं तो कुछ नहीं कहना, वर्ना उन्हें एक न एक दिन दुष्यन्त कुमार की इन पंक्तियों की पीड़ा और तनाव से साक्षात्कार करना पड़ेगा—

हो गयी है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए।
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए॥
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं।
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए॥

'जर्जर कश्ती' का जुलाई-८५ अंक, गजल प्रतियोगितांक के रूप में प्रकाशित हुआ। इस अंक के निर्णायकों ने गजल के संदर्भ में गजल के चरित्र

Scanned by CamScanner

या उसके वास्तविक अर्थ (प्रेमिका से प्रेम पूर्ण बातचीत) को ताक पर रखकर जिस तरह गजल की सामाजिक संदर्भों में तरफदारी की और प्रस्तुत अंक की पुरस्कृत रचनाओं में सहजता, कर्णप्रियता, खूबसूरती का बखान किया उससे एक बात एकदम स्पष्ट हो जाती है कि ये निर्णायक, साथ ही तथा-कथित तेवरीकार और 'जर्जर कश्ती' के सम्पादक श्री ज्ञानेन्द्र साज दुनिया के उन्हीं मुन्सिफों में से एक है जो सच का गला घोंटते या काटते हैं—

क्या होगा अंजाम न जाने फिर एक सख्श ने सच बोला।
उसके लिए दुनिया के मुन्सिफ फिर से खंजर ले आये हैं॥

—(गजल प्रतियोगितांक—'जर्जर कश्ती')

क्या 'जर्जर कश्ती' के निर्णायक और ये तथाकथित सौन्दर्यवादी भिन्डरवाला की बारूद उगलती स्टेनगनों से आहत या ढेर होती इन्सानियत के बीच कोई लालित्यपूर्ण बिम्ब तलाश कर सकेंगे—

है गरम मौसम हवा में गंध बारूद भरी।
संत भी करने लगे संहार के हस्ताक्षर॥

या

अपने घर में खुद लगा ली आग यारो।
घुस गये पूजा घरों में नाग यारो॥

—(गजल प्रतियोगितांक—'जर्जर कश्ती')

कहने का अर्थ ये है कि गजल की सामाजिक दायित्यों से युक्त तरफ-दारी करने वाले आज भी अधिकांश गजलगो या गजल के निर्णायक वही लोग हैं जिन्हें न तो सामाजिक चरित्र की पहिचान है और न साहित्यिक चरित्र की।

तेवरी उस तथाकथित सौन्दर्य की कभी पक्षधर नहीं रही है जो—शारीरिक सौन्दर्य प्रसाधनों में निहित रहता है। बल्कि वह तो शरीर के स्थान पर व्यक्ति के उस मन-मस्तिष्क की पहिचान कराती है जो पत्नी और वेश्या, बहिन और प्रेमिका, कॉल गर्ल और मां, पिता और अय्याश, शासक और कुशासक में अन्तर स्पष्ट करता है। साथ ही परिवार समाज, देश, मानवता के प्रति उस कर्तव्य का बोध कराती है जो व्यक्ति से व्यक्ति को, नारी से पुरुष को दायित्व के आधार पर जोड़ता है। वह सरिता, सुषमा, रमा, मारिका में प्रकाशित लैला-मजनू, शीरी-फरिहाद, हीर-रांझा के उन कारनामों की न तो पहले कभी पक्षधर थी और न अब है, जो सिर्फ शारीरिक सम्भोग के लिये सौन्दर्य के मानचित्र बनाती है। **—श्री विजयपालसिंह**

Scanned by CamScanner

तेवरियाँ

(एक)

हाय क्या नाजुक घड़ी है ?
हर तरफ धोखाधड़ी है ।
दुश्मनों से निभ गई पर,
बात मित्रों पर अड़ी है ।
लोग रोना भूल बैठे,
पीर गहरे तक गढ़ी है ।
जी रहा आदम, कि अरथी—
आदमीयत की सड़ी है ।
कुछ तो अनहोना घटेगा,
प्रीति पत्थर से लड़ी है ।
हो गये भीतर से बागी,
शान्ति बाहर से जड़ी है ।

—राजेन्द्र सोनी

(दो)

मैं सुन रहा हूं बात सभी इत्मिनान से,
फरमा रहे हैं आप जो दबी जुबान से ।
मुझको इन्हीं हाथों से ही कुछ हाथ लगा है,
कारूं के खजाने से न तेलिया मसान से ।
मैं वो नहीं कि चोर बजारी में साथ दूं,
चाहे मुझे जाना ही पड़े इस जहान से ।
बोता है पसीना तो उगाता है रोटियाँ,
मेहनत की बात पूछ लो जाकर किसान से ।
इन रास्तों को और न गुमराह करें आप,
भटकेगा रहगुजर कोई पग के निशान से ।

—कामेश्वर त्रिपाठी

Scanned by CamScanner

॥ तेवरी ॥

कहने को हैं कबीर की चादर की तरह लोग
अपराध में हैं छींट की चूनर की तरह लोग।
तालाब के पानी हैं, सीमा से जो बंधे
फिर भी हुमक रहे हैं अब बादर की तरह लोग
लोकल को देखकर ये नाक-भौं सिकोड़ते
पर डींग हाँकते हैं, बिरादर की तरह लोग।
बतलाते हैं शागिर्द हैं, बेटे हैं 'गुरु' के
मंचों पै पेश आते हैं फादर की तरह लोग।
कार्यक्रम में बुलायेंगे तो अहसान करेंगे
आदर भी करेंगे तो निरादर की तरह लोग।

—गिरि मोहन 'गुरु'

पुलिस की दमनकारी प्रवृत्ति का
ऐतिहासिक विवेचन

आतंक (लघुकथा संग्रह)

संयोजक—धीरेन्द्र शर्मा, सं०—नंदल हितैषी

सम्पर्क—अन्तरा प्रकाशन, ५१ श्रीशचन्द्रबसु मार्ग, इलाहाबाद।

सत्य प्रकाशन की अनुपम भेंट—

मचान (तेवरी संग्रह)

सम्पादक—**पवन कुमार 'पवन'**

संम्पर्क—पशु चिकित्सालय, शामली (उ०प्र०)

गजल सिर्फ गजल है तेवरी नहीं !

'सुपरब्लेज़' के बहस—स्तम्भ में भाई रमेशराज के विचार पढ़कर लगा कि उन्हें शायद बेवजह की थोथी बहस करने की आदत—सी है। वे गजल के कुछ बदले हुए रूप को 'तेवरी' की संज्ञा देने पर उतारू हैं। बात समझने की है कि आदिमानव भी आदमी ही था आज भी आदमी ही कहलाता है और सदैव वह आदमी ही कहलाता रहेगा। अब यदि कोई रमेश जी-सा व्यक्ति आदमी के बदले हुए रूप को यदि कोई अन्य संज्ञा देने पर उतारु हो जाए तो सिवा उसकी अपाहिज महत्वाकांक्षा पर तरस खाने के/उसको क्या कहा जा सकता है ?

वर्तमान में गजल न तो प्रेमी-प्रेमिका के बात-चीत के अर्थ में है और न ही हिरन के मुंह से निकली कराह है। प्रातः वन्दनीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के कथनानुसार, साहित्य समाज का दर्पण है। अतः साहित्य की सभी विधाएं भी इस कथन की अनुगामी हैं। वर्तमान में काव्य की सभी उपविधाएं, अन्य विधाएं एवम् अनुविधाएं वर्तमान की स्थितियों एवम् परिस्थितियों से पूर्णरूपेण प्रभावित हैं। उसी प्रकार गजल ने भी अपने तेवर समय के अनुरूप बदले हैं और अब वह कथ्य के आधार पर नहीं बल्कि प्रारूप के आधार पर परिभाषित होती है तथा समझी जाती है। यानी अब वह प्रारूप मात्र है। अतः उसे 'तेवरी' या इसी प्रकार की कोई भी अन्य संज्ञा देना ठीक वैसे ही है— जैसे वर्तमान में आदमी को आदमी न कहकर कुछ और कहना।

—सतीशराज पुष्करणा

मार्च ८५ अंक के बहस शीर्षक स्तम्भ के अन्तर्गत रमेशराज द्वारा प्रस्तुत प्रतिक्रियात्मक आलेख 'गजल-गजल है, तेवरी-तेवरी पढ़कर' ऐसा प्रतीत हुआ जैसे यहाँ भी खालिस्तान की माँग की तरह पृथकतावादी का हाथ खड़ा किया जा रहा हो। यह तय है कि गजल एक पुरानी विधा है जिसका अभिप्राय प्रायः माशूका के लिए ही लिखे जाने से रहा है। यह बात दिगर है कि आज परिस्थितियों के समानान्तर गजल के कथ्य में कुछ विशेष किस्म का तेवर महसूस किया जा रहा है। तथापि दायरे वही हैं। इसी बदलते हुए तेवर को देखकर तथाकथित इसके पक्षधर लोग इसे तेवरी शीर्षक देकर एक अलग पहचान बनाने की कोशिश में लिप्त दिखाई पड़ रहे हैं।

परन्तु मेरी समझ से, अगर गजल का तेवर बदला है तो इससे गजल के अस्तित्व पर कोई खतरा उपस्थित नहीं हुआ है ? तेवरी शब्द किसी भी भावनात्मक

Scanned by CamScanner

स्थिति को दर्शाता है न कि किसी भावना–विशेष के एक पक्ष को। यानी मासूका के प्रति लिखी गई गजल में भी एक खास तेवर है। इसी प्रकार तथाकथित जेहादी किस्म के उग्र विचार वाले अथवा समकालीन स्थितियों के विरूपित करने वाले सदृश काव्य रूपों में भी हम एक प्रकार का तेवर पाते हैं। श्री रमेशराज के अनुसार शान्ति शीर्षक से क्रान्ति की बात नहीं की जानी चाहिए। दूसरी तरफ वे यह भी कहते हैं कि विरहाग्नि में जलती हुई प्रेमिका के चेहरे पर सूर्य की प्रखरता (क्रान्ति के प्रतीक) अथवा प्रकाश पिण्ड की चमक देखी जा सकती है। यानी दूसरी पंक्ति में वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि मासूका की विरहाग्नि में लिखी गई गजल में तेवर की मधुरता उग्र–सी हो सकती है।

जैसा कि कहानी, लघुकथा, परीकथा, दंतकथा, सन्दर्भ कथा, आदि के वर्गीकरण के आधार के बावजूद वे सब कहानी है। रचना के कथ्य, विस्तार और संप्रेषणीयता आदि को मद्देनजर रखते हुए 'तेवरी' भी गजल का एक उग्रवादी रूप ही है।

—बी० एल० प्रवीण

इन दिनों गजल को लेकर जो बहस के मुद्दे सामने आए हैं, और गजल के खिलाफ जो कुछ भी कहा जा रहा है। वह न केवल गैर जिम्मेदाराना है बल्कि कहने वालों के कथन में शेरो-शायरी से दूर से भी जान-पहचान नहीं लगती। गजल को पारिभाषिक दृष्टि से देखें तो इसमें हुस्नोइश्क के अलावा नैतिकता, दार्शनिकता, धार्मिकता, एकता, राष्ट्रीयता, अध्यात्मिकता आदि विषयक ख्यालोतजुर्बे जमाने से मिलते हैं, मसलन, गालिब, मीर, दर्द, शाद, हसरत, फानी, जिगर, जोश, फैज, साहिर, कैफी-आजमी, अली सरदार जाफरी वगैरह-वगैरह। तेवरी वह खुला मैदान है, जहाँ न कोई बन्दिश है न घेराव, पागलों की तरह चीखना चिल्लाना है जहाँ बास्ट की घुटन है जिसमें मौत के लिये जगह तो है। लेकिन जिन्दगी की शहनाईयों के लिये कोई उम्मीद नहीं है। कुछ और लोगों की गजल के बारे में क्या राय है, वह भी तेवरी वालों को जान लेनी चाहिये। मिसाल के तौर पर नरेन्द्र वशिष्ट—अभिव्यक्ति की दृष्टि से गजल अपने आप में सम्पूर्ण अभिव्यक्ति का माध्यम है निजी भी और सामाजिक भी। "शिव ओम अम्बर के अनुसार आज की गजल किसी शोख नाजनीन की हथेली पर अंकित मेंहदी की दन्त कथा नहीं, युवा आक्रोश की मुट्ठी में थमी हुई प्रलयंकारी मशाल है, वह रनवासों की स्त्रियों से प्राप्त की गई किसी रसिक की रसवार्ता नहीं बल्कि भाषा के भोजपत्र पर विप्लव की अग्नि ऋचा है।"

अतः यह मान लेनें की बात है, गजल, शिल्प, कथ्य, कलात्मकता, वैचारिक प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से जितनी शीरी है उतनी ही तल्ख भी, जो सम-सामयिकता वक्त और हालात से गहरे रूप में जुड़ी है।

इसके विरुद्ध गलत बयानी दरअसल शातिराना चालें हैं, तेवरी नपुंसक-आक्रोश की तरह है, चिल्लाहट, बौखलाहट में स्वयं को स्थापित करने की साजिश की बू है, और कुछ भी नहीं !

—तारिक असलम तस्नीम

Scanned by CamScanner

तेवरी-पक्ष

पाठकीय

अलीगढ़

अब तो यह व्यर्थ की बात लगती है, जहां आप कबीर को जानते हैं, समझते नहीं। तेवरी में कहां है कबीर का गूढ़-रहस्यमय दर्शन? कबीर का एकांश भी छू पाये तो बेहतर था। सरकारी और सुविधा भोगी कवियों की तरह हम नहीं हो सकते। आप ऐसा ही कुछ कर रहे हैं।

—श्री राजेन्द्र सोनी

पत्र-पत्रिका या किसी भी वस्तु के लिये समीक्षा या प्रशंसा प्राप्त करना आसान है, परन्तु विषयवस्तु के आधार पर जनयुग को प्रभावित करना उतना आसान नहीं। तेवरी ने जो रास्ता अपनाया है……इससे न तो साहित्यिक अभिवृद्धि ही होती है और न विकास, अपितु जन-जागरण का यह मुखौटा मात्र ही सिद्ध होगा। **—श्री बद्री विशाल मिश्र**

तेवरी अपने तेवरों से ध्यान आकर्षित करती है। **—श्री अशोक जैन**

मुझे तो शंका है कि क्या तेवरी साहित्यकारों के बीच अपनायी जाएगी या अंत में 'हिन्दी गजल' ही कही जाएगी।

—श्री सुनील हेम्ब्रम 'दिलकश'

तुम्हारी अवधारणा से सहमत-असहमत होना एक अलग बात है, पर तुम समर्पित होकर पत्रिका निकाल रहे हो, यह बड़ी बात है।

—श्री सुरेन्द्र सुकुमार

फजल इमाम मल्लिक की एक बात खरी लगी—'कविता की शर्तों को पूरी किये बिना विधा को जन्म दिया गया।'

—श्री रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

उक्त अंक में आपने बहुत बड़ी भूल करदी है जो अच्छी नहीं लगी। मेरी रचना पृष्ठ-१८ पर कैलाश पचौरी के नाम से एवं उनकी तेवरी को मेरे नाम से छाप दिया गया है।

—श्री शिव डोयले

आदरणीय बन्धु! इस भूल के लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं।

—सम्पादक

Scanned by CamScanner

एक शाम : बेंजामिन के नाम

१९८५ नववर्ष के शुभारम्भ पर गाँधी नगर, अलीगढ़ में श्री गिरीश गौरव के प्रवास पर एक तेवरी-गोष्ठी का आयोजन हुआ। गोष्ठी के आरम्भ में अमर क्रान्तिकारी कवि बेंजामिन मोलोइस को श्रद्धांजलि देते हुए गोष्ठी के संचालक श्री रमेशराज ने कहा :—'कवि बगावत की कविता लिखता ही नहीं बल्कि कविता को अपनी जिन्दगी में उतारता भी है। बेंजामिन के बलिदान से बेंजामिन की कविता समाप्त नहीं हो जाती बल्कि कविता की सार्थक शुरूआत होती है।' आगे उन्होंने कहा कि—'कविता ने अन्याय के खिलाफ कभी चुप्पी नहीं साधी, वह समय-समय पर आदमी के हाथों में तलवार से लेकर बमों तक सभी अस्त्र-शस्त्र थमाती रहती है। भाई बेंजामिन जिस ईमानदारी और सच्चाई के लिए फाँसी पर चढ़ गये, उसी ईमानदारी और सच्चाई की पहल तेवरीकार अपनी तेवरियों में करते रहेंगे, ऐसी हमारी उम्मीद है।

काव्य गोष्ठी की शुरूआत गिरीश गौरव की सरस्वती वन्दना के साथ हुई। वन्दना के बाद कवि अनिल कुमार अनल ने अपनी तेवरियों के माध्यम से जहाँ कवि को दायित्वों का बोध कराया, वहीं कुव्यवस्था पर प्रहारात्मक रवैया भी अपनाया :—

"कलम यूँ चलती रहे कोशिश करो।
आग—सी जलती रहे कोशिश करो॥
इस देश में फिर से महाभारत लिखो।
आदमी को क्रान्ति के कुछ खत लिखो॥"

आगे कवि गिरीश गौरव ने जन-जीवन को अपनी तेवरी में भोगते हुए कहा—

दर्द को काटेंगे सारी उम्र हम।
बो गया है वो फसल वातावरण॥

और इसीलिए उन्होंने आगे जिन्दगी की असहायता को—'जिन्दगी दुश्वार है अब राम जी, हर कोई लाचार है अब राम जी।' कहकर व्यक्त किया। गोष्ठी को आगे बढ़ाते हुए श्री कुमार अशोक ने अपनी ऐसी तेवरियाँ प्रस्तुत कीं जिनका हर तेवर आदमी की घटिया-मानसिकता एवं व्यवस्था-नीतियों का तल्ख परिचय देता है :—

'आदमी को खो रहे हैं हम। आज कैसे हो रहे हैं हम॥'
'हर नशेमन पर जहाँ चील बैठी हैं। हर परिन्दे पर यहाँ पहरा हुआ है॥'

श्री विजयपाल सिंह ने—"देखें कैसे आरियाँ काटेंगी अब शाख। पेड़-पेड़ तक आ गये बेंजामिन के शब्द।" अपनी तेवरी के माध्यम से बेंजामिन की कविता को जीवित रखने का प्रयास किया। और आगे आज की विषय समीकरणों वाली जिंदगी में भूख का कटु अहसास—"प्यार हालातों से जिस दिन कर लिया। / भूख ने उस रोज आलिंगन किया।" कह कर व्यक्त किया। श्री सुरेश त्रस्त ने—'धरम को बेचने वाले वतन भी बेच डालेंगे।' 'अभी तक तो इन्होंने सिर्फ तारीखों को बेचा है, सभी खुशहाल सालों के ये सन् भी बेच डालेंगे।' कहकर जहाँ धार्मिक एवं राजनीतिक ठेकेदारों को नंगा किया वहीं आम जिंदगी की संवेदनात्मक प्रस्तुत भी की—

'अब मुसीबत में पड़ी है जिंदगी। एक सूली पर चढ़ी है जिन्दगी ॥'

श्री गजेन्द्र बेबस ने—'अँधेरों में जो लोग पुजते रहे हैं, सवेरे की लाली से डरते रहे हैं।' कहकर एक खास वर्ग की कड़वी सच्चाई उजागर की, वहीं व्यवस्था का काला चिट्ठा खोलने में भी अपनी ईमानदारी का परिचय दिया :—

"कैसे कह दें कि बेड़ियां टूटीं।
देश अब भी गुलाम पाया है ॥"

अन्त में संचालक श्री रमेशराज ने पहले—"पी लिया सच का जहर जब से हमारे प्यार ने। जिंदगी लगती हमें सुकरात का एक घाव है।" तेवरी में पेट की आग से डरकर सच्चाई पी जाने वालों की बात कहीं और बाद में आम जिंदगी में नव वर्ष को इस प्रकार आँका :—

'तय था लाना नयन को कई सुनहरे ख्वाब।
लेकिन दुख के अश्रुकण ले आया नववर्ष ॥
कर्ता क्रिया दर्द के जिसमें अधर—गुलाब।
त्रासदियों का व्याकरण ले आया नववर्ष ॥"

गोष्ठी का समापन श्री रमेशराज द्वारा बेंजामिन मोलोइस को निम्न तेवरी समर्पित करते हुए किया—

'जन होंगे आजाद अब, भइया बेंजामीन।
राजा मुर्दाबाद अब, भइया बेंजामीन ॥
नहीं परिन्दे हम रहे, हम तो हैं तलवार।
सुन ले ये सैय्याद अब, भइया बेंजामीन।

—कुमार अशोक
रैन बसेरा, सुरेन्द्र नगर, अलीगढ़

Scanned by CamScanner

चार तेवरियाँ

(बेंजामिन मोलोइस की स्मृति में)

(एक)

जिनमें तुम लौ–से जिये, भइया बेंजामीन
कहाँ बुझे ऐसे दिये, भइया बेंजामीन।

तुमने अपना कंठ भी, उनमें किया शरीक
जिन कंठों ने विष पिये, भइया बेंजामीन।

वे क्या जानें आपकी, तेवरियों का दर्द
लोम गजल के काफिये, भइया बेंजामीन।

चिट्ठी कोई क्रान्ति की, अब अवाम के नाम
लायें दुख के डाकिये, भइया बेंजामीन।

(दो)

किये तंत्र पर वार, बेंजामिन कब चुप रहा ?
शब्द बने हथियार, बेंजामिन कब चुप रहा ?

जब भी टूटे लोग, जब भी मन दुख से भरा
लुटा कभी जो प्यार, बेंजामिन कब चुप रहा ?

वे थे कोई और, जो सच से कतरा गये
माने होंगे हार, बेंजामिन कब चुप रहा ?

ऐसे पढ़े न गीत, जिनमें राज–प्रशस्तियाँ
बोला सच हर बार, बेंजामिन कब चुप रहा ?

Scanned by CamScanner

[तीन]

सच की लिये बुलन्दियाँ, संघर्षों के जोश
रहे क्रान्ति की गर्जना, बेंजामिन के गीत।

शब्द-शब्द से फूटता, जनता का आक्रोश
जन की आहत भावना, बेंजामिन के गीत।

भूख, गरीबी त्रासदी, पीर, घाव, दुख, जोश
करें उजागर यातना, बेंजामिन के गीत।

सोया है विद्रोह गर, कल आएगा होश
बोते हैं सम्भावना, बेंजामिन के गीत।

[चार]

सच के रहे करीब, तुम कोई सुकरात थे
राजपथों से दूर, जनपथ के जज्बात थे।

प्यासे—प्यासे गाँव, प्यासा—प्यासा हर अधर
ऐसे में तुम बन्धु, सावन की बरसात थे।

पाँव—पाँव में चोट, मंजिल तक जाना कठिन
थके हुए जो लोग, उन पथिकों के साथ थे।

जिसकी घायल सांस, जो डूबा दुख दर्द में
जिसके मन में पीर, उस निर्धन के [illegible] थे।

रमेशराज

समीक्षालय

उत्तराधिकार लम्बी (कविता)

कवि—नीलाभ, मूल्य—पांच रुपये, पृष्ठ—२४,
संपर्क—७६३ अग्रवाल कालोनी, जबलपुर ।

नीलाभ की लम्बी कविता, उत्तराधिकार, सर्वहारा में व्याप्त आक्रोश, और घुटन का एक खुला दस्तावेज है । अपने एक मित्र की आत्महत्या से प्रेरित इस कविता में पलायन या निराशा का नामोनिशान नहीं है, अपितु संघर्ष का आह्वाहन है, युद्ध का बिगुल है । कवि अपने मित्र, सुरेन्द्रपाल, की लड़ाई को उत्तराधिकार-स्वरूप स्वीकारता है, परन्तु उसकी मौत को अपनी मौत, नहीं स्वीकारता, और यही इसी कविता की विशिष्टता बन पड़ी है ।

कवि, जनसाधारण के दिलो–दिमाग पर छाये क्रूर अँधेरों की, तो कभी, उसकी बेलगाम इच्छाओं, और पराजित क्षमताओं के बीच पसरी खाई की बात करता है, और कभी उसकी 'क्षमताओं के तस्करों', संसद में बैठे वि-नायकों पर, शब्दों के चाबुक बरसाता है। यद्यपि कविता, ओजस्वी, प्रभावमयी, तथा कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से उत्तम है; परन्तु सम्प्रेषण की कमी, तथा सोच में बिखराव अखरता है ।

कविता प्रेस की अशुद्धियों से मुक्त है ।

दायरे अपने–अपने (कविता संग्रह)

संपादक–कृष्ण कुमार धमीजा, प्रकाशक–सुरेश जागिड़ 'उदय', संपर्क–१०८/३, महादेव मोहल्ला, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)मूल्य–चार रुपया ।

प्रस्तुत काव्य संग्रह 'दायरे अपने–अपने' हिन्दी के नव हस्ताक्षरों का संकलन है । सभी कवि प्रतिभा के धनी हैं । उनकी अभिव्यक्तियों में युवा पीढ़ी की मनो-वृत्तियों, भावनाओं, चिन्तन और उनमें व्याप्त हताशाओं की पीड़ा है, सामाजिक विसं-गतियों, कुरीतियों के प्रति सामाजिक चेतना जागृत करने का भाव है ।

सुरेश जागिड़ 'उदय' ने 'सहमी दुल्हन' में दहेज से अभिशप्त लड़की का मार्मिक चित्रण किया है । किशोर शर्मा (तलाश), विभु (गुरु और भेड़िये) नरेश

बांसल, ज्ञान विवेक, कैलाश चन्द्र 'अंगार', आनन्द कुमार 'गौरव' रामलाल गुप्ता व सोम वर्मा की रचनाएं अन्तर्मन को किसी गहराई तक छील जाती है, कुछ सोचने को विवश कर देती हैं। श्री सुरेश जागिड़ 'उदय' व कृष्ण कुमार धमीजा साधुवाद के पात्र हैं। संग्रह का स्वागत होना चाहिए। भविष्य में यदि इन नव प्रतिभाओं को उचित प्रोत्साहन मिले तो ये समाज को कुछ होश व उपयोग भी दे सकते हैं।

नयी धरती नये बीज (लघुकथा संग्रह)

लेखक—अमरनाथ चौधरी 'अब्ज' प्रकाशक—ऋचा VI D/1091, बोकारो स्टील सिटी-827006, मूल्य पांच रुपया।

अब तक प्रकाशित लघुकथा संग्रहों की त्वरित और सघन आवृत्तियों में 'नयी धरती नये बीज' एक विशेष आवृत्ति के साथ प्रकट हुआ है। प्रस्तुत संग्रह की लघुकथाएं एक ओर जहाँ अपने पाँवों पर एक लम्बी यात्रा के लिये अग्रसर होती हैं, वहीं दूसरी ओर नवागतों के मार्ग दर्शन के लिये उस राह पर अपने स्वस्थ पदचिह्न भी छोड़ती हैं। शिक्षा, बेरोजगारी, कुव्यवस्था और गन्दी राजनीति के प्रति 'अब्ज' ने छटपटाहट को काफी महसूस किया किया है। राजनीतिक विसंगतियों को 'आवरण' और 'यथार्थ' में चित्रित किया गया है। इसी प्रकार 'मूल्यांकन', 'गुरुदक्षिणा', 'बर्दी', कलमदान-आदि लघुकथाओं में, शिक्षा, पुलिस और कुव्यवस्था के सड़ते हुए अंगों का बड़ा ही सजीव व मार्मिक चित्रण किया है। 'सेक्स' कुंठाओं पर आधारित रचनाएं अधिक हैं; फिर भी कुल मिलाकर 'अब्ज' का यह संग्रह, लघुकथा इतिहास में एक नये अध्याय के रूप में जुड़ेगा। अमरनाथ चौधरी अब्ज को बधाई!

मचान (तेवरी संग्रह)

सं०—पवन कुमार पवन, सत्य प्रकाशन, पशु चिकित्सालय शामली, मूल्य—पाँच रुपये, सजिल्द—दस रुपये, पृष्ठ—१००

कविता का विद्रोहात्मक स्वर आज के युग-बोध को जिस तरह दर्शाता है, उससे एक बात एकदम स्पष्ट होती है कि आज कवि त्रासद व्यवस्था में न तो मात्र संशोधन चाहता है और न उससे कोई क्षणिक सुविधा। बल्कि आज के कवि की कविताएं समकालीन परिस्थितियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन की मांग करती हुई नजर आ

Scanned by CamScanner

रही हैं। 'मचान' के सम्पादक पवन कुमार 'पवन' के अनुसार—'हम ऐसी व्यवस्था खिलाफ हैं, जो पूंजीवादी या सामंती हो। ....हम ऐसे माहौल की परिकल्पना करते हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों का सदुपयोग कर सके। जिसमें असमानता, जुगुप्सा, भेदभाव, खुदगर्जी और भ्रष्टाचार न हों'। उक्त कथन को चरितार्थ करते कुछ तेवर दृष्टव्य हैं—

'झोपड़े तो रोज ही जलते रहे हैं आज, आप महलों को जलायें हम भी देखेंगे।'

—विनीता 'निर्झर'

'जलना है बेशक जल जायें लेकिन अन्तिम चाह,
भीषण दावानल सुलगायें, ये सरसों के खेत।'

—ऋ० दे० शर्मा 'देवराज'

आज तक सर्कस के घेरे में नचाया था तुम्हें,
आज तुम हण्टर चलाओ, हम भी देखेंगे।

—राकेश राही

विश्व से शोषण मिटे अब यह हमारी माँग है,
युद्ध का खतरा हटे अब यह हमारी माँग है।

—डा० देवराज

वर्षों तक बन्दी बने उजालों को, उनकी मुट्ठी से निकालना चाहिए।

—जय सिंह आर्य 'जय'

मजहबो-कौम के किरदार बदलने होंगे,
ये तअस्सुब के अंगार बदलने होंगे।

—दिनेश अन्दाज

जहर सरीखी हुई जिन्दगी, पीते-पीते अमृत भाई।

—रमेशराज

आपने जिसको बनाया शहर का मुखिया, लूट ली उसने नगर की लाज मोटर में।

—पवन कुमार 'पवन'

इसके अतिरिक्त मधु अरोरा, अशोक तरुण, ब्रजपाल शौरभी, सुधाकर संगीत, जसवीर राणा की तेवरियाँ भी तीखी और मारक हैं। किन्तु बिम्ब और छन्द सम्बन्धी अधकचरापन काफी रचनाओं में है, जो सम्पादक के कुशल सम्पादन पर प्रश्न टाँकता है। छपाई सामान्य है।

Scanned by CamScanner

संकल्प के स्वर (कविता संग्रह)

सं०—राम गोपाल वार्ष्णेय, मूल्य—सजिल्द–पच्चीस रुपये, पृष्ठ—एक सौ बारह, संपर्क—संकल्प प्रकाशन, अलका इलैक्ट्रोनिक्स, सुभाष मार्ग, अलीगढ़

राष्ट्रीय एकता को समर्पित 'संकल्प के स्वर' एक ऐसा राष्ट्रवादी स्वर है जिसमें स्वाभिमानी चेतना की गूंज है। बदलते युग की करवटों का सिलसिला है। प्रजातन्त्र का दीप न बुझने देने का संकल्प है। राष्ट्रीय अखण्डता को भंग करने वाले देशद्रोहियों को खुली चुनौतियाँ हैं। श्री शम्भुनाथ के अनुसार—उक्त संकलन में "अन्तर्निहित, अनुबूझ प्राणशक्ति के कारण कविता ने पुनः नये आयामों को सम्भावित किया है।"

प्रस्तुत संकलन की सार्थकता बनाए रखने मे श्री रामप्रकाश 'राकेश', श्री कृष्ण मौजी, श्री रामगोपाल वार्ष्णेय, श्री कन्हैया लाल 'बृजेश', श्री फूलचन्द 'शंख', श्री रोशन लाल सुरीरवाला आदि की कविताएं ही सामर्थ्यवान हैं। मुद्रण साफ–सुथरा है।

नदी के निकट (गजल सग्रह)

कवि—चन्द्रभाल 'सुकुमार', मूल्य—सजिल्द बीस रुपये, पृष्ठ—बासठ प्रकाशक—संकल्प प्रकाशन, अलका इलैक्ट्रोनिक्स, सुभाष मार्ग, अलीगढ़।

उक्त संग्रह में एक तरफ जहाँ चन्द्रभाल 'सुकुमार' की रचनाएं व्यक्तिगत प्रेमालाप की स्थितियों में नदी के निकट देह की दोहावली का जिक्र करती हैं वहाँ यह कहने से भी नहीं चूकतीं—

दर्शनों की उसे सीख क्या दीजिये,
उम्र जिसकी ढली है नदी के निकट।

कुछ रचनाओं में कवि का यथार्थवादी दृष्टिकोण बड़ा ही तीखा और मारक है जिसका हर शब्द यातना, त्रासदी, दुराचरण को बड़ी बेरहमी से उजागर करता है अस्तु—

छेड़छाड़ गुलाब की है, भर्त्सना तेजाब की है।
नहीं गंगाजल मुंहों में, भरी महक शराब की॥

या

समय का कैसा असर है, रक्त का प्यासा भ्रमर है।
मौन हैं साधक स्वरों के, मेंढकों का दल मुखर है।'

कुल मिलाकर संग्रह स्वागत योग्य है, मुद्रण त्रुटिविहीन, आकर्षक है।

—समीक्षक-योगेन्द्र शर्मा

Scanned by CamScanner

बुक-पोस्ट/मुद्रित सामग्री

सार्थक सृजन प्रकाशन

१५/१०९ ईशानगर, अलीगढ़ २०२००१ (उ०प्र०)

सेवा में,

श्री ....

....

....

प्रकाशक/मुद्रक/संपादक, रमेशराज द्वारा सार्थक सृजन प्रकाशन, ईशा नगर अलीगढ़ के लिए शारदा प्रिंटर्स, सासनी गेट, अलीगढ़ से मुद्रित।

Scanned by CamScanner